जैन पदार्थ—विवेचना में वैज्ञानिक दृष्टि

—डॉ. नवलता
प्रवक्ता—वि. सिं. स. ध. कालेज,
कानपुर

मानव सृष्टि के पूर्व तथा पश्चात् जो कुछ भी अस्तित्ववान् था, है अथवा सम्भावित है, उनके मनन तथा चिन्तन का इतिहास अनादि है। अनादि परम्परा से सृष्टि की उत्पत्ति तथा विनाश का अर्थ किसी शाश्वत अव्यक्त की अभिव्यक्ति तथा संहार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चाहे वह वैदिक ऋषियों के गहन प्रयोग और अनुभवपरक प्रमाणित किये गये सिद्धान्त वचन हों; वेदान्त दर्शन तथा नास्तिक दर्शनों की क्रान्तिपूर्ण वैज्ञानिक व्याख्याएँ हों; यूनान, इटली, जर्मनी तथा चीन की दार्शनिक मान्यताएँ हों; अथवा आधुनिक विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ तथा उनके अध्ययन की सीमाएँ; सबके अध्ययन का विस्तार वहीं तक है, जहाँ तक दृष्टि का, बुद्धि का, मन का प्रसार है। दूसरे शब्दों में जो कुछ 'अस्ति' की सीमा में आता है, वह सब चिन्तन का विषय है। हाँ, यह अवश्य है कि अध्ययन की विधि, उद्देश्य तथा स्वरूप में भिन्नता है। सृष्टि के जड़-चेतन का अथवा जीव-जगत का मूल कारण, मूलभूत तत्व—चाहे वह वेदान्त का ब्रह्म हो अथवा चार्वाकों का परमाणु-स्वभाव, अनादि अनन्त शाश्वत है। चाहे वह एक हो या अनन्त, मूल तत्व या तत्वों की निरन्तर गतिशील परिवर्तन की सहज, स्वाभाविक प्रक्रिया, तत्वों का संचय और प्रचय, विस्तार और संकोच, सब कुछ किसी स्वचालित, स्वाभाविक ऊर्जा के अजस्र-स्रोत की भाँति अविच्छिन्न-गति से निरन्तर चलता रहता है। यह क्रम ही सृष्टि को काल के पथ पर ले जाता हुआ प्रलय, महाप्रलय, सृष्टि, स्थिति की नेमि पर घुमाता रहता है, अविराम यात्री की भाँति, जिसका पाथेय ही गम्य हो।

उस अव्यक्त तथा उससे व्यक्त पदार्थ जगत् के स्वरूप, कार्य तथा गति को देखने, निरीक्षण, परिवीक्षण, अन्वीक्षण तथा व्यक्तीकरण की क्षमता और दृष्टिकोण की विभिन्नता अवश्य ही परिलक्षित होती है। जो कुछ भी ज्ञेय तथा अभिधेय है, वह या तो दृश्य, मूर्त, भौतिक पदार्थ के रूप में है अथवा अमूर्त प्रत्यय के रूप में। पदार्थ और प्रत्यय भिन्न हैं अथवा अभिन्न? तात्विक दृष्टि से दोनों का साधर्म्य तथा वैधर्म्य किस सीमा तक बोध्य है? दोनों की वैज्ञानिक व्याख्या के आधार तथा दार्शनिक चिन्तन की पृष्ठभूमि क्या है? इस विषय में वैमत्य रहा है। कुछ विचारकों के मतानुसार प्रत्यय मात्र—वेद्य तत्व की प्रधानता तथा तात्विक सत्ता है, कुछ शास्त्रवेत्ता केवल पदार्थ (ज्ञेय वस्तु—आकार) को ही अध्येय तथा व्याख्येय मानते हैं, कुछ दार्शनिक पदार्थात्मक प्रत्ययवाद, तो कुछ प्रत्ययात्मक पदार्थवाद के पोषक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थ शब्द की व्यापक परिभाषा के अनुसार तो प्रत्यय भी पदार्थ की सीमा से परे नहीं है। अपितु दोनों परम एवं चरम सत्य रूप गम्य तक पहुँचने की यात्रा के क्रमिक आयाम हैं, क्योंकि पदार्थ के स्वरूप का अनुशीलन तथा विश्लेषण किये बिना प्रत्यय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से विज्ञान और दर्शन परस्पर सहयोगी तथा सम्पूरक हैं। विज्ञान का कार्य, जो वस्तु जैसी है, उसके यथातथ्य स्वरूप का विश्लेषण है, किन्तु दर्शन उस वस्तु के स्वरूप का बाह्यावरण बेधकर आन्तरिक तत्व का उद्घाटन कर चरम यथार्थ की प्राप्ति का उपाय बताता है। विज्ञान 'क्या' का उत्तर देता है, तो दर्शन 'क्यों' और 'कैसे' का समाधान।

आज के अतिविकासवादी युग का विज्ञान अभी तक पदार्थ जगत् के ही सम्यक् तथा आत्यन्तिक सत्य (तथ्य) के अनुसन्धान तथा विश्लेषण में सफल नहीं हो सका है, जिसका प्रमाण है नित्य-परिवर्तनशील वैज्ञानिक सिद्धान्त। जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन एक वैज्ञानिक ने किया उसी को असिद्ध कर अन्य सिद्धान्त का प्रतिपादन दूसरे वैज्ञानिक ने कर दिया। खण्डन-मण्डन की यह परम्परा भी वर्तमान चिन्तन की देन नहीं है। सहस्रों वर्ष पूर्व हमारे महर्षियों ने, विचारकों ने इस परम्परा का सूत्रपात किया था। यह भारतीय शिक्षा की मौलिक पद्धति भी थी, और चिन्तन का दृष्टिकोण भी। परन्तु भारतीय तथा पाश्चात्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण में यह अन्तर अवश्य था कि पाश्चात्य आधुनिक विज्ञान में एक सिद्धान्त कालान्तर में असिद्ध होकर नये सिद्धान्त को जन्म देता है तथा वह अन्तिम सिद्धान्त ही सर्वमान्य होता है, जबकि दार्शनिक सिद्धान्त अपने आप में कभी असिद्ध तथा अमान्य नहीं होते, उन्हें मानने वाले किसी भी काल में हो सकते हैं। अतः वैज्ञानिक सिद्धान्तों की परिवर्तनशील प्रकृति का तर्क बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वस्तुतः सिद्धान्त व्यवस्था के अपरिवर्तनीय नियम तथा परिवर्तन के आधार होते हैं।

मूल सिद्धान्तों के निर्धारण में भारतीय विज्ञान के प्रतिपादक वेद, वेदान्त, आस्तिक तथा नास्तिक दर्शन तथा अन्य शास्त्रों ने श्रद्धापरक तर्क द्वारा पदार्थ और प्रत्यय दोनों के स्वरूप की व्याख्या की। वेदों में विश्वास रखने वाले आस्तिक दर्शनों में व्याख्यात्मक जटिलता नास्तिक दर्शनों की अपेक्षा अधिक थी। नास्तिक दर्शनों में जैन दर्शन वस्तुनिष्ठ विश्लेषण तथा संश्लेषण दोनों ही दृष्टियों से जनसामान्य के यथार्थ विषयक दृष्टिकोण के अधिक निकट था, अपि च, इसकी व्याख्याएँ अधिक स्पष्ट तथा वैज्ञानिक थीं। यद्यपि जैन दर्शन के बीज ई० पू० ५००-६०० के लगभग पड़ चुके थे, और विक्रम की प्रथम शताब्दी तक उनका अंकुरण भी हो चुका था। छठी शताब्दी तक वैचारिक प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में न्याय, बौद्ध तथा जैन दर्शन प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में अपने-अपने सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा में लगे थे। यद्यपि न्यायदर्शन की वैज्ञानिकता भी कम नहीं थी, तथापि जैनदर्शन अपने आचार तथा व्यावहारिक पक्ष की प्रबलता के कारण तथ्य को अधिक वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर सका। आधुनिक विज्ञान का प्रारम्भ तो चतुर्दश शताब्दी के पश्चात् हुआ।

जैनदर्शन का चिन्तन तथा अभिव्यक्ति मूर्त तथा अमूर्त, स्थूल तथा सूक्ष्म, भौतिक तथा अभौतिक सत्ताओं का जिस प्रकार समन्वय करता है, वह निश्चय ही यह मानने के लिए उत्साहित करता है कि जैनदर्शन विज्ञान के आधारभूत घटकों में से एक है। न्यायदर्शन की ही भाँति जैनदर्शन भी उस प्रत्येक घटक को पदार्थ स्वीकार करता है जो सत्तावान् है, ज्ञेय है तथा अभिधेय है। पदार्थ को बाह्य तथा सत् मानने वाले जैन दार्शनिक पदार्थ-ग्रहण के विषय में दो धारणाएँ व्यक्त करते हैं। प्रथम के अनुसार किसी पदार्थ के गुणों तथा विशेषताओं को पदार्थ से अपृथक रूप से ग्रहण किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरणार्थ 'यह पुस्तक है' इस कथन में पुस्तक के साथ उसकी विशेषताएँ भी अपृथक् रूप से ग्राह्य हैं।[1]

द्वितीय धारणा के अनुसार पदार्थों से पृथक गुणों का ग्रहण होता है। यह धारणा सभी पदार्थ-वादी प्राच्य और पाश्चात्य विचारकों तथा वैज्ञानिकों को मान्य है। वर्तमान भौतिक विज्ञान किसी भी पदार्थ में आकृति, परिमाण तथा गति को अवश्य ही स्वीकार करता है। ये तीनों ही गुणधर्म पृथक सत्ता वाले होते हुए भी पदार्थ में आधेय भाव से रहते हैं। कोई भी पदार्थ जब ग्रहणविषयता वाला होता है, तो उसका परिमाण, आकृति तथा गति ही ग्राह्य होती है।

जैनदर्शन अपने जिस मौलिक सिद्धान्त के कारण लोकविख्यात है, वह है स्याद्वाद या अनेकान्तवाद। स्याद्वाद वस्तुतः पदार्थ के स्वरूप विश्लेषण की वस्तुनिष्ठ कल्पना है जो भौतिक विज्ञान के नियमों से तुलनीय है। अनेकान्तवाद के अनुसार कोई भी वस्तु त्रिकाल में न तो पूर्ण सत्य है और न पूर्णरूप में उसका ग्रहण किया जा सकता है।[2] पदार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध में सात प्रकार की सम्भावनाएँ हो सकती हैं, जो सप्तभंगीनय के नाम से विख्यात है।

सप्तभंगीनय में सम्भवतः वैज्ञानिक सम्भावनावाद के बीज निहित हों। स्याद्वाद की व्याख्या के लिए हस्ति का उदाहरण प्रसिद्ध है। जिस प्रकार कोई नेत्रहीन विशालकाय हाथी के सूँड़, कान, पैर आदि का स्पर्श करके उन-उन अंगों को ही हाथी समझने लगता है उसी प्रकार अज्ञान के आवरण के कारण जीव पदार्थ के वास्तविक स्वरूप को जान नहीं पाता। यह अज्ञान इन्द्रियों के सर्वत्र गमन की अक्षमता ही है। स्याद्वाद का सिद्धान्त वैज्ञानिक सापेक्षतावाद की पृष्ठभूमि है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात करने वाले आइस्टीन महोदय ने प्रत्येक पदार्थ को गति का परिणाम बताया। सापेक्षता भी मूलरूप से गति पर ही आधारित है तथा देशिक व कालिक परिवर्तनों का हेतु है। कोई भी वस्तु इस समय जो है, वह अगले क्षण नहीं रहेगी। जबकि सत्य त्रिकालाबाधित अव्यय होता है; और विज्ञान भी अभी तक किसी ऐसे तत्त्व की खोज नहीं कर पाया है, जो अव्यय तथा अविनाशी हो। हाँ परमाणुओं की मूल स्थिति अविनाशी है, किन्तु गति की स्वाभाविक सहज क्रिया के कारण उनमें भी निरन्तर कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। इस दृष्टि से कोई भी वस्तु त्रिकाल में सत्य नहीं होती। इसी प्रकार इन्द्रियाँ एक ही समय में किसी वस्तु के पूर्ण स्वरूप को ग्रहण नहीं कर पातीं। क्योंकि इन्द्रिय का पदार्थ के सभी पक्षों से सन्निकर्ष एक ही क्षण में नहीं हो पाता। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है—जिस प्रकार किसी गोले को सामने रखा हुआ दीपक पूर्णरूप से प्रकाशित नहीं करता, अपितु जहाँ तक आलोक की पहुँच है, वहीं तक गोले को देखा जा सकता है. उसी प्रकार इन्द्रिय का पदार्थ के जिस भाग से संन्निकर्ष होता है उसी का ग्रहण हो पाता है।

इस प्रसंग में विज्ञान यथार्थ का उद्घाटन अन्यान्य भौतिक तथा रासायनिक प्रयोगों द्वारा करता है, जबकि अन्य दर्शनों की भाँति जैन दर्शन उसका कारण खोजता है, जिसका पर्यवसान 'जीव' के 'अज्ञानाभाव' में होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह 'अज्ञान' ही सत्य की खोज की अविच्छिन्न परम्परा को प्रेरित करता है। जैन दर्शन निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति त्रिरत्नों के द्वारा मानता है। ये त्रिरत्न हैं—सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र।[3] सापेक्षतावादी वैज्ञानिक विचारधारा उस निरपेक्ष तत्त्व तक अपनी दृष्टि का विस्तार अभी तक नहीं कर पाई है, यद्यपि कुछ वैज्ञानिक-दार्शनिक इस दिशा की ओर प्रयत्नशील हैं। स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन का नियम विज्ञान को सूक्ष्मतम व्यक्त तक तो पहुँचाने में समर्थ हुआ है, किन्तु अव्यक्त की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उसके स्वरूप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणधर्म की स्पष्ट और सुनिश्चित व्याख्या अभी तक विज्ञान की सीमा से परे है। रत्नत्रय (सम्यक् ज्ञान, सम्यक्दृष्टि तथा सम्यक्चारित्र) बिना अव्यक्त ऊर्जा रूप स्फोटात्मक शक्ति सम्भव नहीं जो वर्तमान आविष्कृत परमाणु ऊर्जा से भी शत-सहस्र गुणा सूक्ष्म है तथा जो 'परा' स्थिति है।

यह तो हुआ पदार्थ के ग्रहण का विज्ञान। अब प्रश्न है पदार्थों की संख्या तथा उनके विश्लेषण का। विज्ञान पदार्थ (Matter) को कुछ मूल तत्वों (Elements) के यौगिक के रूप में परिभाषित करता है, किन्तु पदार्थों की संख्या सुनिश्चित नहीं समझी जा सकती, क्योंकि नवीन अनुसन्धानात्मक प्रयोगों द्वारा मूल तत्वों की संख्या ही बढ़ती जा रही है। जैन दर्शन भी यद्यपि पदार्थों की संख्या अनन्त मानता है, किन्तु गुणधर्मों के आधार पर पदार्थों का वर्गीकरण सात भागों में करता है। ये सात पदार्थ हैं आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, जीव तथा अजीव। जैनदर्शनसम्मत ये पदार्थ वैशेषिक सप्त पदार्थों से भिन्न हैं। कुछ जैन दार्शनिक केवल जीव तथा अजीव को ही पदार्थ मानते हैं।[4] किन्तु विश्लेषण के आधार पर सात पदार्थ स्वीकार करना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इनमें से प्रथम पाँच पदार्थ तथा अन्तिम दो मूर्त तथा भौतिक सत्ता वाले होते हैं। जीव के कर्म ही सभी पदार्थों को प्रभावित करने वाले मूल तत्व घटक हैं।

जैनसम्मत उक्त सप्त पदार्थों का स्वरूप विशुद्ध दार्शनिक होते हुए भी वैज्ञानिक विश्लेषण का अविषय नहीं हैं। संक्षेप में इन पदार्थों की व्याख्या करने पर ज्ञात होता है कि प्रथम पदार्थ आस्रव कर्मों का जीव में प्रवेश अथवा जन्ममरणादि है। यह दो प्रकार का होता है—भावास्रव तथा द्रव्यास्रव। जीव का जन्मादिभाव भावास्रव तथा कर्मपुद्गलों का जीव में प्रवेश द्रव्यास्रव कहलाता है। कर्मों द्वारा जीव को जकड़ना ही बन्ध है। आस्रव के विपरीत कर्ममार्ग का अवरोध संवर कहलाता है। यह जीव को मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। आस्रव की भाँति ही यह भी दो प्रकार का होता है। जीव के जन्मादिभाव का क्षय भावसंवर तथा कर्मपुद्गलों का जीव में न आना द्रव्यसंवर कहलाता है। कर्मफल को जीर्ण कर देना ही निर्जरा है। कर्मों का आत्यन्तिक क्षय मोक्ष है। जीव और अजीव द्रव्य हैं।

परवर्ती भौतिक विज्ञान के आविष्कारों तथा अनुसन्धानों द्वारा पदार्थ के विवेचन में आकृति, परिमाण तथा गति को प्रमुख तत्व स्वीकार किया गया। आकृति तथा परिमाण दोनों गति द्वारा प्रभावित होते हैं। गतिसिद्धान्त आधुनिक भौतिक विज्ञान का आधारभूत सिद्धान्त है। वैज्ञानिक पदार्थ मीमांसा के लिए गति का विश्लेषण अनिवार्य है। तुलनात्मक अध्ययन से जैनदर्शनसम्मत 'कर्म' और वैज्ञानिक 'गति' किन्हीं बिन्दुओं पर समकक्ष तथा समवर्ती प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार आस्रव से लेकर अजीव तक सभी पदार्थों की अभिव्यक्ति और तिरोधान कर्माश्रित है, उसी प्रकार विज्ञान-प्रतिपादित गति समस्त पारमाणविक तथा स्थूल भौतिक संरचना परिवर्तन (परिणाम) और ध्वंस के लिए उत्तरदायी है। गति के कारण ही पदार्थ में निहित ऊर्जा व्यक्त होती हैं। परमाणु में स्थित न्यूक्लियस या नाभिक के आस-पास ऋण विद्युन्मय कण (इलेक्ट्रान) चक्कर लगाते रहते हैं। नाभिक में प्रोटान की स्थिति होती है, जो विभिन्न तत्वों में विविध संख्याओं में होते हैं। इनके अतिरिक्त न्यूट्रान विद्युतरहित कण तथा पाजिट्रान धनात्मक विद्युतयुक्त कण भी परमाणु में पाये जाते हैं। यह विद्युत ऊर्जा रूप तथा अपने से अधिक ऊर्जा की उत्पादिका होती है। गति के कारण प्रत्येक कण परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करता है। यह आकर्षण ही परमाणु संयोग या परमाणु संघात का कारण होता है। परमाणुओं के संघात के लिए न्यूट्रान की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि उसके बिना प्रोटान एकत्र रूप से नहीं रह सकते।[5]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ परमाणुसृष्टि की विशद व्याख्या का अवकाश तथा आवश्यकता नहीं है अपितु इतना ही विचारणीय है कि जिस प्रकार कर्म आश्रवादि का कारण होता है उसी प्रकार सम्भवतः गतिज ऊर्जा अथवा तीव्र विद्युत आवेश तथा भौतिक परमाणुओं के संयोग से जैविक सृष्टि (जन्ममरण) प्रारम्भ होती है। जैविक सृष्टि विषयक विशेष चर्चा जीव पदार्थ के विवेचन का विषय है। भावास्रव तथा द्रव्यास्रव के लक्षणों पर विचार करने से कर्म और भोग की अविरल गतिशील परम्परा सुस्पष्ट होती है। जीव का जन्मादिभाव कर्मपुद्गलों के प्रवेश के बिना भोक्तृत्व नहीं प्रदान कर सकता तथा कर्मों के द्वारा जन्मादि का निर्धारण होता है। जहाँ परमाणु सृष्टि का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ जैन दर्शन अन्य दर्शनों के विपरीत विज्ञान की भाँति ही परमाणुओं की समरूपता तथा समगुणवत्ता को स्वीकार करता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक परमाणु में किसी भी भौतिक पदार्थ को उत्पन्न करने की शक्ति रहती है। वे ही परमाणु पार्थिव सृष्टि करते हैं, जो वायवीय, जलीय अथवा तैजस सृष्टि। पदार्थ की भिन्नता में परमाणु-क्रमाङ्क प्रभावी होते हैं। 'परमाणु क्रमाङ्क' वे संकेत विशेष हैं, जो किसी तत्व (Element) के परमाणु में प्रोटानों तथा इलेक्ट्रॉनों की संख्या का निर्धारण करते हैं। जैसा कि, पूर्व चर्चा की जा चुकी है कि, प्रोटॉन न्यूट्रॉनों द्वारा एकत्रीभूत होते हैं। पार्थिवादि परमाणुओं के परिणाम में गतिज ऊर्जा भी कारण होती है। ऊर्जा के वेग में अन्तर तथा परमाणु-क्रमाङ्क के कारण ही कुछ परमाणु पार्थिव पदार्थ की सृष्टि करते हैं तो कुछ तैजस आदि की।

यद्यपि कर्म और गति की जैनसम्मत तथा विज्ञान प्रतिपादित परिभाषाएँ भिन्न हैं तथापि स्वरूप की दृष्टि से कुछ अधिक अन्तर नहीं। गति में स्वभाव कारण होता है तथा कर्म स्वतः सिद्ध होते हुए भी उत्प्रेर्य होता है। परमाणुओं में विक्षेप गति या कर्म के ही कारण होता है। इस प्रकार जन्ममरणचक्र आस्रव के समकक्ष ही है। जीवविज्ञान तथा भौतिक जीव विज्ञान के अनुसार परमाणु में चैतन्य उत्पन्न होने पर उसमें अनेक ऐसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जो उसे जड़ से भिन्न करते हैं। वे चेतन परमाणु असीमकाल तक गतिशील होते हुए गति द्वारा ही नियन्त्रित होते हुए चक्रवत् स्थित रहते हैं। भौतिक तन्त्रों का संसर्ग होते ही इनका भोग की ओर चुम्बकीय आकर्षण हो जाता है। विचारणीय है, क्या 'बन्ध' का वैज्ञानिक स्वरूप इस स्वाभाविक प्राकृतिक चेतन सृष्टि प्रक्रिया में देखा जा सकता है?

परमाणुओं की स्थिति सदा एक सी नहीं रहती, अपितु निरन्तर गतिशीलता के कारण उसके स्वरूप में उसके अन्दर स्थित प्रोटॉनों की संख्या में तथा ऊर्जा में भी परिवर्तन होता रहता है। किसी तत्व विशेष के परमाणुओं में तीव्र गति वेग के कारण उनकी ऊर्जा दूसरे तत्व में परिणत हो सकती है। ऊर्जा का निरन्तर क्षय होता रहता है। तत्व परिवर्तन की यह स्थिति बहुत समय पश्चात् आती है। सम्भवतः जैविक, भौगोलिक, आनुवंशिक यहाँ तक कि सांस्कृतिक परिवर्तनों में भी किसी सीमा तक यह कारण रहता हो। जैसे कोई चक्र वेगपूर्वक घुमाकर छोड़ दिए जाने पर अपने अधिकतम वेग तक पहुँचकर पुनः विपरीत वेग से गतिमान होते हुए स्थिर हो जाता है, स्थिरता के बिन्दु पर पहुँचते ही पुनः वही क्रम प्रारम्भ हो सकता है, उसी प्रकार अपरिमित काल तक ऊर्जा का क्षरण शून्यता के बिन्दु तक पहुँचता है, पुनः संकोच-विस्तार चलता रहता है। शून्यता का यह बिंदु इस प्रकार विनाश का बिन्दु न होकर ऊर्जा का तत्त्वान्तर में परिवर्तित होने का बिन्दु है। यही वह बिन्दु है, जहाँ कुछ विशेष परिस्थितियों में द्रव्य के गुण-धर्म परिवर्तित हो सकते हैं। परमाणु क्रमाङ्क अधिक होने से उसमें से स्वतः विकिरणें निर्गत होने लगती हैं, जिनका निर्धारण प्रोटॉनों की संख्या देखकर किया जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं ।[6] यह स्थिति गति को लगभग वही अवस्थिति बतलाती है, जो 'संवर' तथा 'निर्जरा' की है।

गति के आत्यन्तिक क्षय के प्रश्न पर विज्ञान मौन है। जिस प्रकार गति स्वयं सापेक्ष होते हुए पदार्थों की सापेक्षता के लिए उत्तरदायी है, वैसे ही कर्म आस्रवादि पदार्थों की सापेक्ष स्थिति के लिए उत्तरदायी है। जीव के कर्मों का आत्यन्तिक क्षय ही जैन मत में मोक्ष है। वैज्ञानिक गवेषणाएँ अभी तक इस विषय पर प्रयोग तथा निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं कर पायी हैं, कि अनन्त सृष्टि चक्र के प्रवाह का, अनन्त-चेतन परमाणुओं का पर्यवसान कहीं है अथवा नहीं। भले ही यह अप्रासंगिक तथा अप्राकरणिक प्रतीत हो किन्तु, चिन्तन का विषय अवश्य हो सकता है कि जीव के कर्मों का क्षय किस सीमा तक तथा किस रूप में होता है? जीवों की संख्या भी न्यूनाधिक होती रहती है अथवा निश्चित रहती है? जीव विज्ञान के अनुसार प्रत्येक जैविक तन्त्र में अपने ही समान जैविक तन्त्रों को उत्पन्न करने की क्षमता होती है।[7] ये जैविक तन्त्र भौतिक तन्त्र से सम्पर्क टूटने के पश्चात् (मृत्यु के पश्चात्) कहाँ जाते हैं, वे पुनः शरीर धारण किस आधार पर करते हैं? क्या कोई ऐसा बिन्दु भी है, जहाँ वे जैविक तन्त्र परमाणुरूप में विखण्डित हो जाते हैं? यदि विज्ञान इन प्रश्नों का उत्तर दे सका, तो जैविक तन्त्रों की गति का विराम बिन्दु जैन सम्मत (तथा अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों में भी प्रतिपादित) मोक्ष की समस्या का वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत कर सकेगा।

उक्त पाँचों पदार्थों का भोक्तृभाव से जीव तथा भोग्यभाव से अजीव से सम्बन्ध है। जीव तथा अजीव जैन मत में द्रव्य हैं। द्रव्य गुण तथा पर्याय से युक्त पदार्थ है।[8] द्रव्य में रहने वाले तथा स्वयं गुण न धारण करने वाले धर्म गुण तथा द्रव्य का भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में जाकर होना पर्याय कहलाता है। गुणधर्म नित्य तथा पर्याय अनित्य है।[9] द्रव्य की यह परिभाषा भी वैज्ञानिक है। न्यायादि दर्शनों की भाँति ही गुण तथा क्रियावान् होना द्रव्य का लक्षण है, यह विज्ञान स्वीकार करता है। मूलतः यह द्रव्य दो प्रकार का है—अस्तिकाय तथा अनस्तिकाय। काल, तम इत्यादि अदृश्य पदार्थ अनस्तिकाय तथा जीव और अजीव अस्तिकाय हैं, क्योंकि ये दृश्य हैं। जीव भी बद्ध तथा मुक्त भेद से द्विधा है। बद्ध जीवों में एकेन्द्रिय अचर वनस्पति आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय (मनुष्य) इन चर जीवों की गणना होती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि वनस्पति में जीवन का अनुसन्धान आधुनिक जीव-विज्ञान की खोज समझी जाती है, बल्कि अभी तक यह विवादास्पद विषय है; किन्तु लगभग २ सहस्र वर्ष पूर्व जैन दर्शन ने कितना वैज्ञानिक निर्णय प्रस्तुत किया, इसका प्रमाण द्रव्यों का उक्त वर्गीकरण है। अजीव द्रव्यों के अन्तर्गत धर्म, अधर्म, आकाश, काल पुद्गल की गणना की गई है। धर्म तथा अधर्म की व्याख्या जैन दर्शन क्रमशः गति सहकारी कारणभूत द्रव्यविशेष तथा स्थैर्य सहकारी कारणभूत के रूप में करता है जो परम्परागत न होकर पारिभाषिक है। एक गति है तो दूसरा स्थिति। एक प्रेरक है तो दूसरा निष्क्रिय ये अनुमान द्वारा सिद्ध हैं।[10] ये जड़ भाव हैं तथा सम्पूर्ण तत्वमीमांसा को प्रभावित करते हैं। विज्ञान की भाँति ही, जैन धर्माधर्म की धारणा समग्र अभिधेय को गति तथा स्थिरता इन दो अवस्थाओं में विभक्त करती है। विज्ञान की शाखाओं के रूप में जिन गतिविज्ञान (Dynamics) अथवा गति सम्बन्धी विज्ञान (Kinematics) तथा स्थितिविज्ञान (Statics) की प्रतिष्ठा है, वे भी पदार्थों की इन दोनों प्रकार की अवस्थाओं का ही अध्ययन करते हैं।

न्यूटन ने गति सम्बन्धी जिन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया, उनके अनुसार पदार्थ या तो ऋजु अथवा वक्र गति वाले होते हैं।[11] स्थिति गति सापेक्ष है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च, जो निरन्तर प्रत्येक क्षण में आविर्भाव और लय को प्राप्त होता है, गति तथा स्थिति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहे वह त्रिगुणों की साम्यावस्थारूप प्रकृति हो, शान्त अवस्था में स्थित परमाणु हो, माया हो अथवा पुद्गल हों ! भेद केवल नाम-रूप का है, चिन्तन के दृष्टिकोण का है, मूल रूप में एक ही शाश्वत अविनाशी तत्व विद्यमान है, जो अव्यक्त रूप से व्यक्त होता है जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् का मत है।[12]

जैन आकाश को द्रव्य मानकर अनुमान से उसकी सिद्धि मानते हैं क्योंकि पुद्गलों की व्यापकता के लिए कोई आधार अवश्य मानना पड़ेगा। विज्ञान आकाश को नहीं मानता, वह दिक् और काल (Space and Time) की सत्ता स्वीकार करता है। आकाश तो वस्तुतः वह सम्पूर्ण रिक्त स्थान है जहाँ कोई पदार्थ नहीं है। यहाँ विज्ञानवेत्ताओं का तर्क हो सकता है कि परमाणु सघन अथवा विरल रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं; अतः उस आकाश की सिद्धि नहीं होती, जो रिक्त स्थान का पर्याय है। इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि परमाणुओं का संघनित होना दृश्य पदार्थ की स्थिति है। विरल रूप में परमाणुओं के होते हुए भी पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना किसी अवरोध के गतिमान होते हैं, क्योंकि परमाणुओं का अपना कोई निश्चित आकार नहीं होता, इसी से आकाश की सिद्धि होती है। उपाधिभेद से वही घटाकाश इत्यादि के रूप में अभिधेय होता है।

अन्तिम अजीव द्रव्य पुद्गल है। 'पूरयन्ति गलंति च' इस व्युत्पत्ति के आधार पर पुद्गल वे द्रव्य हैं; जो अणुओं के विश्लेषण या संघात से स्कन्धादि की उत्पत्ति के कारण होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—अणु तथा स्कन्ध या संघात। विज्ञान की भाषा में इन्हें क्रमशः Atomic तथा Compound कहा जा सकता है। अणु अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उपभोग्य नहीं हैं। द्व्यणुक से आरम्भ करके स्कन्धों का निर्माण होता है। पुद्गल उपादान तथा मूल इकाई है। संघात ही दृश्य जगत की उत्पत्ति करता है, जो रसायन विज्ञान की यौगिकों की धारणा के ही समान है। जिस प्रकार जैन मत में संघात या स्कन्ध से ही स्थूल जगत की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार रसायन विज्ञान प्रत्येक पदार्थ को कुछ विशेष मूल तत्वों (Elements) के यौगिक के रूप में विश्लेषित करता है।

ये पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण से युक्त होते हैं।[13] भौतिक पदार्थों का निष्पादन करने वाले इन अणुओं का अपना निश्चित परिमाण तथा आकार नहीं होता। इनमें गुणगत ध्वंस विद्यमान है।[14]

यह ध्वंस विनाश (प्रध्वंसाभाव) न होकर क्षय या क्षरण रूप है। परमाणु का विरलत्व या सघनत्व वस्तु के आकार को प्रभावित करता है। विज्ञान इस तथ्य को मानता है। यही कारण है कि समान संख्यक परमाणुओं वाले दो पदार्थ अथवा समान भार वाले दो पदार्थ परमाणुओं के बिरलत्व या संघनत्व के कारण भिन्न आकार के होते हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन दार्शनिकों ने जिन सिद्धान्तों की स्थापना की तथा पदार्थों का जिस प्रकार विवेचन किया वह वैज्ञानिक पद्धति है। जो वर्तमान विज्ञान-वेत्ता विकासवाद का मिथ्या उद्घोष करते हुए आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानों को मानव की चमत्कारपूर्ण बुद्धि का परिणाम मानते हैं, वे अपने सहस्रों वर्ष पूर्व प्रतिपादित किए गए दार्शनिक विचारों को पुरातन इतिहास कहकर उनका उपहास करते हैं, किन्तु उन दार्शनिक विचारों को कितने विचार मन्थन के पश्चात् प्रस्तुत किया गया था, यह विचार का विषय है। दर्शन का क्षेत्र विज्ञान के क्षेत्र से अधिक व्यापक है क्योंकि विज्ञान ब्रह्माण्ड से भी परे उसे नियन्त्रित करने वाली शक्ति के विषय में मौन है जबकि दर्शन किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ण सत्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्त सत्ता अथवा स्थिति को मानता है चाहे वह ज्ञान मात्र ही क्यों न हो। जैन पदार्थ मीमांसा को एक-एक कोण से विज्ञान की तुला पर रखकर निष्पक्ष समन्वयात्मक समीक्षा की आवश्यकता है। इसके लिए अध्येताओं को प्रोत्साहन तथा प्रेरणा प्रदान कर उनमें दर्शनों के वैज्ञानिक अनुशीलन के प्रति अभिरुचि जागृत करने की आवश्यकता है।

टिप्पण-सन्दर्भ

1. History of Indian Philosophy—S. N. Dass Gupta, Page 176
२. भारतीय दर्शन—डॉ० कुंवरलाल व्यासशिष्य—पृ. १७४
३. 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि।' —तत्त्वार्थसूत्र १/१
४. 'अत्र संक्षेपतस्तावज्जीवाजीवाख्ये द्वे तत्वे स्त:।' —सर्वदर्शन संग्रह—पृ. १४३
५. द्रव्य के गुण—डा. डी. बी. देवधर—पृ. ३
६. विज्ञान का दर्शन—डा. अजित कुमार सिन्हा—पृ. ७३
७. विज्ञान का दर्शन—पृ. १४७
८. 'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्।' तत्त्वार्थसूत्र ५/३७
९. सवदर्शन संग्रह पृ. १५४
१०. 'अतएव धर्मास्तिकाय: प्रवृत्यनुमेय: अधर्मास्तिकाय: स्थित्यनुमेय:।'—सर्वदर्शनसंग्रह—पृ. १५२
११. ऋजुगति Rectilinear Motion तथा वक्रगति Curvilinear Motion कहलाती है। Handbook of Elementary Physics—N. Koshkin and M. Shirkevich—Translated by F. Leic Page 17
१२. वाचारम्भणं विकारोनामधेयम्……। छा० उ० ६-४-१
१३. 'रूपरसगन्धवर्णवन्त: पुद्गला:।' —तत्त्वार्थसूत्र ५/२४
१४. भारतीय दर्शन का इतिहास—हरदत्त शर्मा पृ. ८१

सुचिरं पि अच्छमाणो,
वेरुलिओ कायमणिओ मीसे।
न य उवेइ कायभाव,
पाहन्नगुणे नियएण ॥

—ओघ नि. ७७२

वैडूर्य रत्न काच की मणियों में कितने ही लम्बे समय तक क्यों न मिला रहे, वह अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण रत्न ही रहता है, कभी काच नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org